

प्रवचन-१६२, श्लोक-२३८, रविवार, ज्येष्ठ शुक्ल १०, दिनांक २२-०६-१९८०

नियमसार। श्लोक है। है प्रवचनसार का। अमृतचन्द्राचार्य का आधार देते हैं।

आत्मा धर्मः स्वयमिति भवन् प्राप्य शुद्धोपयोगं,
नित्यानन्द-प्रसर-सरसे ज्ञान-तत्त्वे निलीय।
प्राप्स्यत्युच्चै-रविचलतया निःप्रकम्प-प्रकाशां,
स्फूर्जज्ज्योतिः सहजविलसद्रत्नदीपस्य लक्ष्मीम् ॥

आहाहा! धर्म का स्वरूप ऐसा है, प्रभु! शुद्धोपयोग को प्राप्त करना, वह धर्म है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह तो शुभराग है। यह तो आत्मा को नुकसान करनेवाला है। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना, यह तो पाप है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह भी पुण्य बन्धन और संसार का कारण है। ये दोनों शुभ-अशुभभाव अशुद्धोपयोग कहलाता है। दोनों धर्म नहीं है, दोनों अधर्म हैं। आहाहा! इस अशुद्धोपयोग से रहित शुद्धोपयोग, वह धर्म है। है ?

श्लोकार्थः इस प्रकार शुद्धोपयोग को प्राप्त करके... आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति प्रभु का उपयोग लगा दे। शुभ-अशुभराग तो बन्धन का कारण है, संसार है। शुभ-अशुभभाव, दोनों संसार है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु में उपयोग जोड़ दे। इसका नाम शुद्धोपयोग कहलाता है। शुभ-अशुभ उपयोग, दोनों अशुद्धोपयोग मलिन और बन्धन का कारण है। आहाहा! शुद्धोपयोग, चैतन्य शुद्ध वस्तु है, सच्चिदानन्द मूर्ति प्रभु है, उसका उपयोग जो शुद्ध; जिसमें राग के कण की अपेक्षा नहीं... आहाहा! जिसमें अकेला चिदानन्द आत्मा ही उपयोग में वर्तता है, उस उपयोग को शुद्धोपयोग-धर्म कहा जाता है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! कभी सुना नहीं था वहाँ। भटकने में सब, भटकने में गया न? आये न, भाग्यशाली। यह वस्तु, बापू! सुनने को मिलती नहीं, भाई! आहाहा!

प्रभु अन्दर चैतन्य ज्ञानानन्दस्वरूप विराजमान है। जिसकी सत्ता में अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। शक्तिवान स्वयं है। प्रभु स्वयं आत्मा शक्तिवान है, उसमें अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। आहाहा! उन अनन्त शक्ति का भी भेद लक्ष्य में न लेकर... आहाहा! शुभ और अशुभराग

का उपयोग तो मैल और बन्धन का कारण है। परन्तु आत्मा में एकरूप है, तो भी अनन्त शक्तियाँ, उनका भेद भी लक्ष्य में लेने से राग हो, ऐसा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! अरे! इसकी प्रभुता, इसे महत्ता जँचती नहीं। बाहर की चीज़ की महिमा इतनी मिठास घुस गयी कि जो देखा नहीं, उसकी मिठास ही नहीं। देखता है, उसकी मिठास घुस गयी है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप नमून चखाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यहाँ तो वस्तु यह है, प्रभु! यहाँ तो प्रभुरूप से बुलाते हैं। आचार्यों ने भगवानरूप से बुलाया है। हे भगवान! आहाहा! रंक और राजा सबको आचार्य ने (समयसार की) ७४ गाथा में तीन बार भगवानरूप से सम्बोधन किया है। आहाहा! ७४ गाथा। प्रभु! शुभ-अशुभभाव, वह मलिन है। पहला बोल है। भगवान निर्मलानन्द है – ऐसा वहाँ ७४ गाथा में कहा है। आहाहा! ७२ गाथा, ७२। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का स्मरण, पंच परमेष्ठी की भक्ति और उन्हें मस्तिष्क में याद करना, वह सब संसार और राग है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : किस धर्म की बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा के धर्म की बात है।

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजमान है। आहाहा! अरे रे! उनका विरह पड़ा। पंचम काल में केवलज्ञान रहा नहीं। प्रभु के पास से विरह पड़ा। आहाहा! ऐसा यह धर्म तीन लोक के नाथ अनन्त तीर्थकरों ने स्वीकार किया। प्रभु! तेरी प्रभुता की बात क्या करें? वचनातीत-विकल्पातीत तेरी चीज़ है। उसे हम वचन द्वारा प्रभुरूप से तुझे कहते हैं। आहाहा! भगवानरूप से तुझे कहते हैं और हम ऐसा कहते हैं कि हम तो भगवान हुए... आहाहा! प्रभु! सब भगवान होओ, दुःखी न होओ! राग का विकल्प उठता है, वह दुःख है, नाथ! आकुलता है, वेदन में दुःख है। आहाहा!

इस प्रकार... प्रवचनसार शुद्धोपयोग को प्राप्त करके... पंचम काल के साधु पंचम काल के श्रोता को कहते हैं। ऐसा नहीं कहते कि तुझे प्राप्त नहीं होगा। चन्दुभाई! आहाहा! पंचम काल के सन्त, पंचम काल के अप्रतिबुद्ध शिष्य को कहते हैं, हे शिष्य! इस प्रकार,

जो विधि कही, उस प्रकार से शुद्धोपयोग को प्राप्त कर। पुण्य-पाप के परिणाम का विकल्प है, वह वृत्ति छोड़। आहाहा!

प्रभु! शरीर में किस प्रकार की वेदना आयेगी? शरीर में किस प्रकार का रोग आयेगा? वह जड़ है, मिट्टी है। उस मिट्टी में कब क्या होगा? उसे भूल जा। आहाहा! और यहाँ त्रिकाल में कुछ होनेवाला नहीं है। उसे रोग नहीं है, राग नहीं है। ऐसी चीज़ अन्तर आनन्दकन्द प्रभु विराजता है न? आहाहा! जिसमें हीनता नहीं, अशुद्धता नहीं, विपरीतता नहीं, किसी का सम्बन्ध उसे नहीं। ऐसी चैतन्यसत्ता भगवान तुझमें विराजती है, प्रभु! आहाहा! उसका उपयोग कर, प्रभु! इसके बिना जन्म-मरण नहीं मिटेंगे। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा!

इस प्रकार शुद्धोपयोग को प्राप्त करके... आहाहा! अभी तो ऐसा कहते हैं कि शुभयोग ही अभी होता है। अर..र..र! प्रभु! तू यह क्या करता है? इतनी भी हाँ नहीं करता कि शुद्धोपयोग से धर्म होता है और इसके बिना शुभोपयोग, वह धर्म नहीं है। अरे रे! इतना भी वीर्य काम नहीं करे, प्रभु! वह अन्तर में जाने को किस प्रकार काम करेगा? आहाहा! समझ में आया? **इस प्रकार शुद्धोपयोग...** आहाहा! कितने ही कहते हैं कि अभी शुद्धोपयोग नहीं होता। पंचम काल के आचार्य महाराज, मुनिराज हजार वर्ष पहले श्रोता को कहते हैं, हे श्रोता! हम जो विधि कहते हैं, वह पुण्य-पाप को छोड़कर... आहाहा! अन्तर में चैतन्यस्वरूप भगवान विराजता है, उसे उपयोग में जोड़ दे। आहाहा!

उसे **प्राप्त करके आत्मा स्वयं धर्म होता हुआ...** आहाहा! आत्मा स्वयं धर्म होता हुआ। अर्थात्? आत्मा स्वयं धर्मरूप से परिणमता हुआ। आहाहा! कोई बीच में दया, दान, भक्ति का राग, उसरूप नहीं परिणमता। आहाहा! **आत्मा स्वयं...** पर की अपेक्षा रखे बिना शुभराग और देव-गुरु-शास्त्र की अपेक्षा रखे बिना स्वयं धर्म प्राप्त करता हुआ। आहाहा! स्वयं धर्म होता हुआ, **स्वयं धर्मरूप से परिणमित होता हुआ...** आहाहा! खबर नहीं मुनिराज को कि इस पंचम काल के शिष्य को मैं कहता हूँ? भाई! तुझमें ताकत है। तेरे झुकाव के बदलने से तुझे दिखता नहीं। तेरा झुकाव पर में जाता है, प्रभु! अन्तर में भगवान विराजता है, वहाँ तेरा झुकाव नहीं जाता और उसका माहात्म्य तथा कीमत नहीं आती।

बाहर का माहात्म्य जरा... आहाहा! कहो, मधुभाई! पैसा-वैसा मिले, वहाँ हांगकांग में लाखों रुपये। अब यह धर्म... आहाहा!

कहते हैं स्वयं धर्मरूप से परिणमित होता हुआ... अर्थात् राग और निमित्त की अपेक्षा बिना। व्यवहार और निमित्त, दो की अपेक्षा रखे बिना निरपेक्षरूप से, स्वयं धर्मरूप से परिणमित होता हुआ... आहाहा! यह जैन वीतरागधर्म। परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर अनन्त तीर्थकरों का यह ध्वनि है। अनन्त तीर्थकरों का यह उपदेश है। आहाहा! इस पंचम काल के साधारण प्राणी अबुध जैसे को भी कहते हैं कि हे शिष्य! तू शुद्धोपयोग को प्राप्त कर न, प्रभु! आहाहा! इससे वह स्वयं धर्म परिणमित होता हुआ। हमारी भी आशा रखे बिना। आहाहा! देव, गुरु और धर्म की भी आशा रखे बिना, उनका भी लक्ष्य किये बिना स्वयं-स्वयं धर्मरूप से परिणमता हुआ। आहाहा! स्वयं धर्म अर्थात् वीतरागरूप से, शुद्धोपयोगरूप से, आनन्दरूप से कहेंगे। (परिणमता) हुआ। स्वयं धर्मरूप से परिणमता हुआ। ओहोहो! गजब श्लोक है।

नित्य आनन्द के विस्तार से सरस... कैसा है प्रभु? तुझे जब उसका उपयोग होगा और उसका परिणमन होगा, तब नित्य आनन्द का विस्तार होगा। जो आनन्द शक्तिरूप से है, जो आनन्द सत्ता के अस्तित्वरूप से है, अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर सत्तारूप से है, वह तुझे व्यक्तरूप से अनुभव में आयेगा। आहाहा! ऐसा धर्म! और इस धर्म का रूप ऐसा दिया कि ऐसा कहे उसे उड़ा दे, मजाक करे कि यह निश्चयधर्म... निश्चयधर्म। बापू! निश्चयधर्म, प्रभु! अर्थात् सच्चा धर्म - ऐसा कह। निश्चय अर्थात् सच्चा / सत्य। व्यवहार अर्थात् उपचार, कथन, वास्तविकता नहीं। आहाहा!

इस प्रकार परिणमित होता हुआ नित्य आनन्द के फैलाव... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नित्य फैलाव। समय के विरह बिना कायम अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव का फैलाव। सरस (अर्थात् जो शाश्वत आनन्द के विस्तार से रसयुक्त हैं)... आहाहा! श्लोक तो बहुत अच्छा आया है। आहाहा! शाश्वत आनन्दस्वरूप प्रभु, जिसकी सत्ता अनादि की है, अनन्त काल रहेगी, वह स्वभाव से खाली नहीं है, स्वभाव से परिपूर्ण भरपूर है। वह अतीन्द्रिय आनन्द के रसवाला शाश्वत् है। आहाहा! उस (शाश्वत आनन्द के विस्तार से रसयुक्त हैं)... शाश्वत् आनन्द शक्तिरूप से, सत्तारूप से है, उसमें उपयोग को

जोड़, तो उसका पर्याय में-अवस्था में आनन्द का फैलाव रससहित आयेगा। आहाहा! बात में ऐसा फेरफार हो गया। व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार (करो)। व्यवहार, राग और जहर है। व्यवहार अर्थात् राग और जहर। उससे कल्याण माने, अरे! प्रभु! तू उस स्वरूप नहीं, नाथ! अतीन्द्रिय कहा न?

(शाश्वत आनन्द के विस्तार से रसयुक्त हैं)... आहाहा! आत्मा में जो शाश्वत् आनन्द है, नित्यानन्द प्रभु है, उसमें उपयोग लगाने से अन्दर पर्याय में आनन्दसहित होता है। शाश्वत् आनन्द है, उसकी व्यक्तता / प्रगटतासहित होता है। आहाहा! पैसा जरा पाँच लाख हो और पाँच लाख पैदा करे, वहाँ तो मानो ऐसा... ओहोहो! क्या हमने किया! और क्या मानो... अरे! प्रभु! क्या किया तूने? वह जहर का प्याला है।

मुमुक्षु : बाप-दादा ने नहीं किया था, वैसा किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाप-दादा ने क्या किया? वह भी जहर किया था। आहाहा! यह सब देखा है न! हमारे बड़ी दुकान चलती थी। कुँवरजीभाई की दुकान। दो दुकानें। एक हमारी पिताजी की दुकान और एक कुँवरजीभाई की दुकान। मेरे बड़े भाई वहाँ (बैठते थे)। दो दुकानें चलती थीं। बड़ी आमदनी, दो-दो लाख की। उस समय, हों! अभी तो बढ़ गया है। चार लड़के हैं, चालीस लाख रुपये होंगे, इससे अधिक होंगे। लाख-सवा लाख की आमदनी तो वर्षों से। उसमें क्या हुआ? उसमें क्या हुआ? आहाहा!

आत्मा में आनन्द भरा है, उसे शक्ति में से व्यक्तता में न करे, प्रभु! तूने क्या किया तब तक? आहाहा! तुझे कहीं चैन नहीं पड़ना चाहिए। आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त कहीं चैन नहीं पड़ना चाहिए। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

पंचम काल में छोटे मुँह बड़ी बातें लगे। बड़ी बात नहीं, प्रभु! पंचम काल के मुनि स्वयं कहते हैं। आहाहा! पंचम काल के मुनि स्वयं कहते हैं, प्रभु! तुझमें शाश्वत् आनन्द पड़ा है न! उसे व्यक्त / प्रगट कर न! प्रभु! प्रगट करने का तो यह है। आहाहा! शाश्वत् अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है न! यह इन्द्रिय के सुख तो जहर के प्याले हैं। आहाहा! विष। एक जगह आया है। विष है, वह तो एक बार मारता है, परन्तु विषय की वेदना अनन्त भव में मार डालती है। ऐसा कहीं आया है।

मुमुक्षु : शीलपाहुड़ में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाहुड़ में आया है। पाहुड़ में शब्द आया है। याद नहीं रहता कहाँ था! भाव याद रहता है। उसमें - पाहुड़ में यह आया है। आहाहा!

आनन्द का रस... आहाहा! विषय के वेदन से, विषय का दुःख तो थोड़ा है। विषय का जहर का, विष के जहर का दुःख तो विषय के दुःख के समक्ष बहुत थोड़ा है। जहर एक बार मारता है और आत्मा के आनन्द को भूलकर विषय में आनन्द मानने में अनन्त भव करता है। आहाहा! अष्टपाहुड़ में है। आहाहा! यह विषय की वेदना की तुझे जो मिठास लगती है, प्रभु! परन्तु वह काले नाग का जहर है। आहाहा! वह शाश्वत्, अन्दर शाश्वत् आनन्द पड़ा है, भगवान! उसके फैलाव से, उसका विस्तार कर... आहाहा! उसे पर्याय में ला। द्रव्य में जो अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, उसे पर्याय में - प्रगट में ला। आहाहा! जो पर्याय की दृष्टि में रुके और दृष्टि आगे जाए तो राग और द्वेष पर जाए, परन्तु वह पर्याय अन्दर में जाने पर पर्याय में आनन्द आवे, आहाहा! उस आनन्द का फैलाव हो, वह आनन्द विस्तरित हो। आहाहा! ऐसा उपदेश है। वे तो (कहें), एकेन्द्रिय की दया पालो, व्रत करो, यह छोड़ो, यह छोड़ो। समझना सीधा-सट (था) भटकने का। आहाहा! भटकने का।

भगवान आत्मा शाश्वत् आनन्द से भरपूर, उसका पर्याय में फैलाव कर, प्रभु! आहाहा! उस आनन्द को पर्याय में विस्तार—शक्ति में से व्यक्तता कर, शक्ति में से प्रगटता कर। उससे रसयुक्त है। ऐसे ज्ञानतत्त्व में लीन होकर,... आहाहा! जिस ज्ञानतत्त्व में अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसे ज्ञानतत्त्व में लीन होकर। ज्ञान अर्थात् आत्मा। आहाहा! ज्ञानतत्त्व अर्थात् आत्मतत्त्व। जिसमें शाश्वत् आनन्द के फैलाव से पर्याय में विस्तार होता है, ऐसे ज्ञानतत्त्व में लीन होकर आहाहा! गजब कलश है न!

अत्यन्त अविचलपने के कारण,... अत्यन्त चले बिना। आहाहा! जैसे अनादि से विकार में से चलता नहीं और हटता नहीं। वह तो कृत्रिम में से हटता नहीं था। यह तो अकृत्रिम शाश्वत् वस्तु है, उसमें अविचलपने के कारण। आहाहा! उसमें एकाग्र होने से अविचल-चलतापन नहीं, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा! अरे रे! सुनने को मिलता नहीं, वह कब प्रगट करे। आहाहा! मनुष्यभव चला जाता है। आहाहा! एक घड़ी में देखो न, यहाँ नहीं देखा? भाईलालभाई का। ऐसे चलकर आये और बैठे। कुर्सी में बैठे, वहाँ मेरी नजर गयी। नहीं तो कौन सामने देखता? ऐसा हो गया। असाध्य हो गये। हार्ट का अटैक आया।

छूट गये, नौ बजे पहले देह छूट गयी। आहाहा! परन्तु वह तो छूटी ही पड़ी है। एकक्षेत्रावगाह में है, इसलिए ऐसा इकट्ठा लगता है। बाकी तो एक क्षेत्र में भी उसका क्षेत्र तो भिन्न है। आत्मा का क्षेत्र और शरीर का क्षेत्र दोनों भिन्न है। कर्म का क्षेत्र और आत्मा का क्षेत्र दोनों भिन्न है, दोनों द्रव्य भिन्न हैं, क्षेत्र भिन्न हैं, काल भिन्न हैं, भाव भिन्न हैं। आहाहा!

अरे! शाश्वत् आनन्द के ज्ञानतत्त्व की अपेक्षा से, प्रभु! दूसरे तत्त्व अद्रव्य हैं, आहाहा! तू है, वहाँ तेरे कारण दूसरे अद्रव्य हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ भी तेरे द्रव्य की अपेक्षा से अद्रव्य है, तेरे क्षेत्र की अपेक्षा से अक्षेत्र है, तेरे भाव की अपेक्षा से अभाव है। आहाहा! तेरे स्वकाल की अपेक्षा से परमेश्वर का काल भी अकाल है। आहाहा! इसकी अपेक्षा से, हों! उनकी अपेक्षा से तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान ज्ञानतत्त्व में लीन होकर, अत्यन्त अविचलपने के कारण, दैदीप्यमान ज्योतिवाले... आहाहा! मुनिराज को शब्द कम पड़ते हैं। कैसे कहना इसे? दैदीप्यमान ज्योति। चैतन्यज्योति दैदीप्यमान है। जलहलज्योति... जलहलज्योति प्रभु। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा तेरे स्वभाव में है न, प्रभु! तू स्वयं ही वह है। आहाहा! और सहजरूप से विलसित... ऐसे दैदीप्यमान ज्योतिवाले और स्वभावरूप से (-स्वभाव से ही प्रकाशित)... अपना जो स्वभाव है, स्व-भाव—अपना स्व, उसका भाव, उस पर्याय में अपने स्वभाव से प्रकाशित। आहाहा! स्वभाव जो त्रिकाली है, उसे पर्याय में प्रकाशित करता हुआ। आहाहा!

रत्नदीपक की निष्कम्प-प्रकाशवाली शोभा को प्राप्त होता है... रत्न का दीपक हो चाहे जैसी हवा चले परन्तु वह रत्न फिरता नहीं। चमक-चमक लगती है परन्तु क्षेत्र बदलता नहीं। रत्न का ऐसा दीपक हो। मणिरत्न। यह हीरा का। आहाहा! नब्बे हजार का हीरा देखा है एक बार तो। बेचरभाई लाये थे। राजकोट। डिब्बी में एक हीरा इतना दाने जैसा नब्बे हजार का। वह तो ठीक परन्तु कहीं-कहीं तो पाँच-पाँच करोड़ के, दस-दस करोड़ के हीरा होते हैं। ऐसी ऊँची चीज़ होती है। वह रत्न जैसे उसकी चमक के लिये अन्दर से सहज चमक उठती है, उसी प्रकार रत्नदीपक की निष्कम्प-प्रकाशवाली शोभा... रत्नदीपक की भाँति निष्कम्प प्रकाशवाली तेरी शोभा है। तू रत्न का दीपक, चैतन्य रत्नदीपक अन्दर प्रकाश का है। आहाहा! मुनिराज को शब्द थोड़े पड़ते हैं। किस प्रकार

इसे कहना? आहाहा! उसे यहाँ दो बीड़ी में बेच डालना, दो रोटी में और पूरणपोली और जरा... आहाहा! अरबी के पत्ते, पतरवेलिया... यह अरबी के पत्ते घी में तले हुए और लड्डू खावे और... आहाहा! अरे! प्रभु! तूने क्या किया? तू कहाँ गया? नाथ! तेरी ऋद्धि में कितना भरा है, प्रभु! तुझे तेरी ऋद्धि की भी खबर नहीं, तुझे उसका विश्वास नहीं। आहाहा!

ऐसे रत्नदीपक का प्रकाश। आहाहा! जैसे रत्न को उसके प्रकाश के लिये उसमें कोई तेल डालना नहीं पड़ता। आहाहा! रत्न के प्रकाश के लिये तेल डालना नहीं पड़ता। स्वाभाविक ही रत्न का प्रकाश है, वैसे ही भगवान आत्मा का प्रकाश, उसे कोई राग की मन्दता का तेल नहीं डालना पड़ता। आहाहा! उसे कहीं सुनने का या बहुत सुने तो वह दीस हो, ऐसा वह भगवान नहीं है। आहाहा!

रत्नदीपक की निष्कम्प—रत्नदीपक जैसे निष्कम्प है और प्रकाश करता है, वैसे भगवान शाश्वत् चैतन्यमूर्ति निष्कम्प है और प्रकाश करता है। आहाहा! **प्रकाशवाली शोभा को प्राप्त होता है...** ऐसी शोभा को वह भगवान (आत्मा) प्राप्त होता है। आहाहा! एक कलश में तो गजब काम करते हैं न! एक-एक कलश पद्मप्रभमलधारिदेव... समयसार के २७८ कलश हैं। इसके (नियमसार के) ३११ हैं। स्वयं के बनाये हुए और आधार के दिये हुए ३११ हैं। आधार के दिये हुए अधिक होंगे, ३११ तो इनके स्वयं के बनाये हुए हैं। आहाहा!

पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि, नग्न मुनि जंगल में अतीन्द्रिय आनन्द के साथ लहरें करते हैं। सिद्ध भगवान के साथ लहरें करते हैं। आहाहा! दिगम्बर मुनि अर्थात् क्या? आहाहा! सच्चे दिगम्बर मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्द के साथ लहर करते हैं। आहाहा! और परीषह तथा उपसर्ग की तो खबर भी नहीं पड़ती। विकल्प आवे तो ख्याल आवे कि यहाँ कुछ है। बाकी तो अन्दर में कुछ नहीं है। आहाहा! ऐसी अपने प्रकाश के रत्न के दीपक की भाँति। रत्नदीपक को कहीं घासलेट डालना नहीं पड़ता। इसी प्रकार तेरे प्रकाश के लिये किसी पर की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! ऐसी शोभा को प्राप्त होते हैं।

(अर्थात् रत्नदीपक की भाँति स्वभाव से ही निष्कम्परूप से अत्यन्त प्रकाशित होता रहता है—जानता रहता है)। बस! यह इसका स्वरूप है। यह तो निष्कम्परूप से

जाना ही करता है। आहाहा! ऐसा धर्म किस प्रकार का? वह तो दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो, दान करो, मन्दिर बनाओ...

मुमुक्षु : गरीब व्यक्ति को क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गरीब है ही कौन ? आत्मा आनन्द का नाथ गरीब है ? प्रभु! आहाहा! आनन्द के जवाहरात से भरपूर है, उसे गरीब कैसे कहना ? आहाहा! स्वयं मानकर बैठा है। आहाहा! जरा कुछ पैसा मिले, कुछ स्त्री अच्छी मिले, उसमें लड़का कुछ ठीक हो, पाँच-सात-दस हजार महीने में कमाता हो। आहाहा! बस मजा करता हो दुःख में। दुःख में, हों! आहाहा!

यहाँ कहते हैं... एक श्लोक में तो गजब किया है ! **रत्नदीपक की भाँति स्वभाव से ही...** रत्नदीपक का प्रकाश स्वभाव से ही। उसे किसी पर की सहायता की आवश्यकता नहीं है, उसी प्रकार भगवान के प्रकाश के लिये कोई परप्रकाश और परसाधन की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! ऐसा निष्कम्परूप से प्रकाशित किया ही करता है। आहाहा! ऐसा श्लोक है। देवचन्दजी! आहाहा! अरे रे! ऐसी बात सुनने को नहीं मिलती। प्रभु! तुझे कहाँ जाना है ? देह छूटकर चला जाता है।

तीन दिन पहले यहाँ भाईलालभाई यहाँ बैठे थे। कुर्सी पर। उनके दामाद आये थे। तो मिलने जाते थे। कुछ नहीं होता। मिलने गये वहाँ से ऐसे आये, बैठे। मेरी नजर ऐसे जरा गई, लोगों की नजर तो ऐसे रही नहीं। मेरी नजर ऐसे जरा गयी। ऐ... यह कैसे हो गया ? ऐ... सा...। जहाँ देखे वहाँ असाध्य। हार्टअटैक। हार्ट का अटैक। आहाहा! बाहर ले गये। नौ बजे पहले तो गुजर गये। देह छूट गयी। डॉक्टर बहिन आयी थी। माधुरी बहिन डॉक्टर है। आयी थी। ...कुछ किया था। ऐसा कि हार्ट है या नहीं कुछ ? छह तो इंजैक्शन दिये। क्या करे इंजैक्शन, बापू! जिसकी स्थिति पूरी हुई... आहाहा!

यह तो रत्नदीपक की भाँति भगवान आत्मा अपनी शोभा से शोभित हो रहा है। उसकी शोभा के लिये पर की कोई आवश्यकता नहीं है। राग की मन्दता, पुण्य और कोई तीर्थकरगोत्र बाँधे, तब ही उसकी शोभा कहलाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह पवित्रता में भी पूरा है और तीर्थकर होवे, वह तो पुण्य में भी पूरा है। इससे साधारण प्राणी पुण्य में नहीं होता। वस्तु में पूर्ण है। आहाहा!

श्लोक-२३८

और (इस १४१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) :—

(मंदाक्रांता)

आत्मन्युच्चैर्भवति नियतं सच्चिदानन्द-मूर्तौ,
धर्मः साक्षात् स्ववशजनितावश्यकर्मात्मकोऽयम् ।
सोऽयं कर्म-क्षय-कर-पटुर्निर्वृते-रेकमार्गः,
तेनैवाहं किमपि तरसा यामिं शं निर्विकल्पम् ॥२३८॥

(वीरछन्द)

जो उत्पन्न स्ववशता से आवश्यक-कर्मस्वरूप अहो ।
सत्-चित्-आनन्दमूर्ति आत्म में निश्चित अतिशय धर्म अहो ॥
कर्मक्षय में कुशल यही यह शिवपुर का है पन्थ कहा ।
अद्भुत निर्विकल्प सुख को मैं शीघ्र इसी से हूँ पाता ॥२३८॥

[श्लोकार्थः] स्ववशता से उत्पन्न आवश्यक-कर्मस्वरूप यह साक्षात् धर्म नियम से (निश्चित) सच्चिदानन्दमूर्ति आत्मा में (सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्मा में) अतिशयरूप से होता है । ऐसा यह (आत्मस्थित धर्म), कर्मक्षय करने में कुशल ऐसा निर्वाण का एक मार्ग है । उसी से मैं शीघ्र किसी (-अद्भुत) निर्विकल्प सुख को प्राप्त करता हूँ ॥२३८॥

श्लोक -२३८ पर प्रवचन

और (इस १४१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) :—

स्वयं टीका करनेवाले श्लोक कहते हैं ।

आत्मन्युच्चैर्भवति नियतं सच्चिदानन्द-मूर्तौ,
 धर्मः साक्षात् स्ववशजनितावश्यकर्मात्मकोऽयम् ।
 सोऽयं कर्म-क्षय-कर-पटुर्निर्वृते-रेकमार्गः,
 तेनैवाहं किमपि तरसा यामिं शं निर्विकल्पम् ॥२३८॥

आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने काम किया है... आहाहा! केवली को भुला दिया है। अन्दर से ऐसे भाव निकाल-निकाल कर रखे हैं, यह वस्तु अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! दूसरे को दुःख लगे, जिस सम्प्रदाय में जन्मा हो उसे। जिसकी संग नहीं, जिस कुल में जन्मा हो, उसकी मान्यता पर चोट पड़े, तब कठोर लगता है। आहाहा!

आचार्य तो ऐसा कहते हैं, प्रभु! मैं गत काल के दुःख को जहाँ स्मरण करता हूँ, दुःख को लक्ष्य में लेता हूँ, वहाँ चोट लगती है। हम आनन्द के भोगनेवाले... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन करनेवाले, गत काल के-भूत (काल) के दुःख, यह अवतार अनन्त काल किये। आहाहा! निगोद के भव किये। एक अन्तर्मुहूर्त में छयासठ हजार। एक निगोद, लहसुन में, प्याज में एक अन्तर्मुहूर्त में छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस भव (किये)। आहाहा! एक श्वास में अठारह भव। ऐसे अन्तर्मुहूर्त में छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस भव। वह एक बार नहीं परन्तु प्रभु अनादि अनन्त काल हुआ, प्रभु! अनन्त बार वहाँ वह भव हुए। ऐसे भव अनन्त बार किये। आहाहा! यह कहीं यहाँ जरा सुविधा, मान और पैसा मिले, वहाँ तो मानों हमें क्या हुआ और हम क्या! आहाहा!

वहाँ कहा न! अफ्रीका में। सात लाख की आबादी है। साढ़े चार सौ तो करोड़पति। मधुभाई! कौन सा गाँव कहा? नैरोबी। छब्बीस दिन रहे न अभी। साढ़े चार सौ तो करोड़पति और पन्द्रह अरबपति। आहाहा! सिर फिर जाए न! अरबपति-सौ करोड़। सौ हजार के लाख और सौ लाख के करोड़ और सौ करोड़ के अरब। हमारे समय में तो अधिक था। सौ अरब का खर्ब और सौ खर्ब का निखर्ब और। खर्ब, निखर्ब, महापद्म जल्दी, अन्त्य, मध्यम, और प्राब्ध उस समय में था। पाठशाला में था। पिहत्तर वर्ष पहले। अरब के ऊपर ले जाते थे। सौ अरब का खर्ब, सौ खर्ब का निखर्ब। खर्ब, निखर्ब, महापद्म, जल्दी, अन्त्य, मध्यम और प्राब्ध यहाँ तक तब आँकड़ा था। आहाहा! ऐसे भव करके प्राब्ध के अनन्त-अनन्त बार प्रभु जिसकी आदि नहीं होती... आहाहा!

अब यहाँ कहते हैं। इसका अर्थ – **स्ववशता से उत्पन्न आवश्यक-कर्मस्वरूप...** स्ववश। आत्मा आनन्द और ज्ञानमूर्ति प्रभु के वश होकर जो उत्पन्न हुई दशा, पुण्य-पाप के वश होकर उत्पन्न हुई दशा, वह अधर्म है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, दया, दान, भक्ति, पूजा, आदि ये दोनों भाव अधर्म हैं। आहाहा! यह **स्ववशता से उत्पन्न आवश्यक-कर्मस्वरूप...** आहाहा! आवश्यकतावाला कार्य। आवश्यक अर्थात् आवश्यकतावाला कार्य। आहाहा! जिसे आवश्यकता ज्ञात हो, वहाँ पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। रुचि अनुयायी वीर्य। जिसका पोषण आवे, उसका पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता; इसी प्रकार जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, उसका अन्तरपुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। ब्रह्मचारीजी! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा!

अरे! एकान्त कह-कहकर शास्त्र खोटे हैं, ऐसा कहकर, अरे रे! प्रभु! गजब कर गये हैं। वर्णीजी कह गये हैं न कि 'सोनगढ़ की पुस्तकें, शास्त्र संसार में डुबो देंगे।' ऐसा कह गये हैं। अर..र..र! प्रभु! क्या किया? प्रभु! आहाहा! चलता नहीं था, इसलिए उन बेचारों को... वैसे तो नरम व्यक्ति थे। आहाहा! निमित्त से पर में बिल्कुल नहीं होता। धारावाही पर्याय बहती है, उसमें और... निमित्त की पर्याय निमित्त में, उपादान की पर्याय उपादान में। किसके कारण कौन होता है? कि नहीं। निमित्त से किसी समय होता है। आहाहा! और क्रमबद्ध की एक के बाद एक होगी, वही होगी कहा। जो होनेवाली हो, वही होगी। एक के बाद एक होगी। वे कहें, ऐसा नहीं। एक के बाद एक होगी परन्तु वही होगी, ऐसा नहीं। बड़ी चर्चा चली। (उन्होंने कहा) सोनगढ़ के सिद्धान्त संसार में डुबो देंगे। आहाहा! अरे! प्रभु! प्रभु!

यह तो तीन काल के त्रिलोकनाथ के सिद्धान्त हैं, प्रभु! यह कहीं सोनगढ़ की बात नहीं है। आहाहा! परमेश्वर महाविदेह में साक्षात् विराजमान हैं। आहाहा! **अरे! हम वहाँ थे और समवसरण में सुनते थे परन्तु परिणाम में अन्तर पड़ गया, अवतार आ गया यहाँ। मरते समय परिणाम में जरा अन्तर पड़ गया। आहाहा!** यह वाणी और यह वस्तु भगवान के घर की है। आहाहा! लोगों को नया लगता है। नया नहीं। अनादि-अनन्त तीर्थकर यही कह गये हैं और यही वस्तु का स्वरूप है। जैनधर्म कोई पक्ष और वाड़ा नहीं है। जैनधर्म, वह वस्तु जो है, उसे जीतना अर्थात् राग-अज्ञान है, उसे जीते और स्वरूप में

आवे, उसका नाम जैन है। यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! 'जिन सो हि है आत्मा...' 'घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन, मत-मदिरा के पान सौं मतवाला समझे न।' आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **स्ववशता से उत्पन्न आवश्यक-कर्मस्वरूप...** देखा! आवश्यक कर्म उसे कहते हैं कि आत्मा के वश से जो कार्य उत्पन्न हो, उसका नाम आवश्यक। उसमें दया, दान और व्रत वह तो पर के आश्रय से उत्पन्न होते हैं। वे आवश्यक नहीं हैं। प्रतिक्रमण में णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, मिच्छामि दुक्कडम् (बोले), वह आवश्यक नहीं है। **स्ववशता से उत्पन्न...** भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसके वश से उत्पन्न आहाहा! मुनि की भाषा तो देखो! संक्षिप्त सार।

स्ववशता से उत्पन्न आवश्यक-कर्मस्वरूप यह साक्षात् धर्म... आहाहा! भाषा तो बहुत सादी-सरल-सीधी है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। वह पुण्य और पाप के विकल्प से भगवान! तू भिन्न है न, प्रभु! बाल, युवा, और वृद्ध न देख। बाल उसे कहते हैं कि जो शुद्धस्वरूप को न मानकर राग को अपना माने, उसे बाल कहते हैं। राग रहा होने पर भी राग से भिन्नता का भान करे, उसे युवा कहते हैं और रागरहित होकर अकेला आत्मा रहे, उसे वृद्ध कहते हैं। आहाहा! बाहर का बाल, युवा, वृद्ध, वह तो देह-जड़-मिट्टी की अवस्था है। तेरी अवस्था तो यह है। बाहिर-जो आत्मा में नहीं, उस बाहर की चीज़ को अपनी मानना, इसका नाम बहिर-आत्मा। आत्मा में नहीं पुण्य और पाप, दया और दान, रागादि आत्मा में नहीं। उन दोनों को अपने मानना, उसका नाम बहिरात्मा। आहाहा! शान्तिभाई! कभी सुना नहीं यह सब। भाषण कर-करके दिये रखा।

मुमुक्षु : दिल्ली में कोई है नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! परन्तु अब आये न फिर से। आहाहा! ऐसी बातें।

स्ववशता से उत्पन्न आवश्यक-कर्मस्वरूप... आहाहा! पर से नहीं। देव-गुरु-शास्त्र के आश्रय से भी नहीं। व्यवहाररत्नत्रय के आश्रय से भी नहीं। **स्ववशता से उत्पन्न आवश्यक...** आवश्यक कार्यस्वरूप। आवश्यक अर्थात् अवश्य कार्यस्वरूप। आहाहा! आवश्यकता इसकी है कि जिससे इसे मुक्ति मिले। आहाहा! है न? अन्दर है। **स्ववशता**

से उत्पन्न आवश्यक-कर्मस्वरूप... आवश्यक कार्य आत्मा के अवलम्बन से हुआ। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ अन्दर से गरज उठा। आहाहा! राग और पुण्य को तो कहीं झिंझोड़ दिया। आहाहा! गर्जना करके उठा अन्दर से (कि) मैं तो आनन्द का नाथ हूँ, अतीन्द्रिय आनन्द हूँ। दूसरे प्रकार से मुझे मत मान। आहाहा! ऐसे स्ववश से उत्पन्न हुआ आवश्यक कार्यस्वरूप यह साक्षात् धर्म नियम से (निश्चित) सच्चिदानन्दमूर्ति आत्मा में... आहाहा! शब्द भी कम पड़ते हैं इन्हें।

साक्षात् धर्म... आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु, उसके स्ववश से उत्पन्न हुआ अवश्य का आवश्यक शुद्धोपयोग, वह साक्षात् धर्म। (निश्चित) सच्चिदानन्दमूर्ति आत्मा में (सत्-चिद्-आनन्दस्वरूप आत्मा में) अतिशयरूप से होता है। यह धर्म आत्मा में होता है, कहते हैं। आहाहा! जैनधर्म यह कोई वाड़ा-पक्ष नहीं है। वस्तु है, उसके स्वरूप का वर्णन भगवान ने देखा, वैसा कहा। आहाहा! स्ववशता से उत्पन्न आवश्यक... आवश्यक अर्थात् जरूरी कार्य - वीतरागीपर्याय। यह साक्षात् धर्म नियम से (निश्चित) सच्चिदानन्दमूर्ति आत्मा में (सत्-चिद्-आनन्दस्वरूप आत्मा में) अतिशयरूप से होता है। वह धर्म आत्मा में होता है। वह धर्म पुण्य और पाप के परिणाम में नहीं होता। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति में धर्म नहीं होता। आहाहा! कितनों ने तो बेचारों ने सुना भी नहीं होगा। ३०-३० वर्ष, ३५-३५ वर्ष चले गये हों, मजदूरी निकाल-निकालकर। अकेली संसार की मजदूरी की। आहाहा! वे मजदूर तो अभी आठ से बारह काम करें और दो से छह। और यह मजदूर सवेरे छह से रात्रि के दस बजे तक।

मुमुक्षु : वे मजदूर तो बीच में बीड़ी पीने जाएँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बीड़ी पीने जाएँ, दिशा को जा आवें, इतना काल बचे। देखा है न। चार घण्टे में नजदीक में दिशा को जा आवे। इसलिए इतना काल बच जाए, पेशाब कर आवे इतना काल बच जाए। आहाहा! सवेरे आठ से बाहर, दोपहर दो से छह। आहाहा! उन्हें यह आठ घण्टे, उनमें भी बचाव करे। पेशाब कर आवे, दिशा करने जाए। थोड़ी देर कोई न देखता हो तो बैठे रहें। आहाहा! और यह मजदूर तो चौबीस घण्टेवाला मजदूर। स्वप्न भी उसी के आवें।

हमारे एक भगत थे न। राणपुर। नाराणभाई के... दीक्षा लेनेवाले थे हमारे पास से,

परन्तु हमने दीक्षा से इनकार किया। अभी दीक्षा है नहीं, अभी साधुपना है नहीं। दीक्षा लेने आये थे। दो-तीन व्यक्ति आये थे। एक राणपुर का था। गुजर गया, जवान कोई था। नाम भूल गये। विशाश्रीमाली थे। वे दीक्षा लेने आये थे। एक गढडा के पास छोटा गाँव है, वहाँ से दीक्षा लेने आया था। अरे! यह दीक्षा हमारे पास तो है। उत्तमचन्द, वडिया-वडिया। उत्तमचन्दभाई ने मन्दिर बनाया और दीक्षा लेने आये। छोटा भाई विवाहित। स्वयं कुँवारे और फिर कहे, महाराज! मुझे दीक्षा दो। मैंने कहा, भाई! हम किसी को दीक्षा नहीं देते। उसे कैसे कहना कि अभी साधुपना है ही नहीं। आहाहा! इच्छा थी। फिर तो बेचारे ने घर में मन्दिर बनाया। हमेशा भक्ति। घर की जमीन में वडिया में स्वयं घर में मन्दिर बनाया। घर में दिगम्बर मन्दिर। हमेशा भक्ति, वाँचन, लड़कों को साथ लेकर वह सब बेचारे पूरे दिन करते। आहाहा! वह भी दीक्षा लेने आये थे, परन्तु कहा हम दीक्षा नहीं देते। उसे ऐसा कहना कि साधुपना है नहीं। बापू! साधु किसे कहना? हमें सब बाहर का त्यागी देखे और सबसे बड़ा देखे। यह साधु है, ऐसा कैसे मानें? बापू! साधुपना अलग प्रकार है, भाई! वस्तु का टुकड़ा भी रखकर साधुपना माने तो नरक और निगोद में जाएगा। आहाहा! ऐसा वचन है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे। उन्होंने यहाँ आकर यह पुकार करके शास्त्र में रचा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह साक्षात् धर्म तो सच्चिदानन्दमूर्ति आत्मा में होता है। अतिशयरूप से अन्दर होता है-आत्मा में होता है। बाहर में नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! टीका-टपका और बड़ी माला गर्दन में डाली... आहाहा! माला डालकर ऐसे घूमते हैं कि हम भगत हैं। ऐसे बाहर में धर्म नहीं है, प्रभु! धर्म तो अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा में है। **ऐसा यह (आत्मस्थित धर्म),...** आहाहा! **कर्मक्षय करने में कुशल ऐसा निर्वाण का एक मार्ग है।** लो, वे दो कहते हैं। व्यवहार से निश्चय होता है। आहाहा! है न वह आर्यिका ज्ञानमती। कुछ पुण्यशाली है। पच्चीस लाख का वहाँ दिल्ली में जम्बूद्वीप और हस्तिनापुर में अस्सी फीट का मानस्तम्भ बनाया। वह ऐसा कहती है। आहाहा! और वह तो ऐसा कहती है कि हम भव्य हैं या अभव्य, काललब्धि पकी है, यह तो भगवान जाने। अर..र..! प्रभु! प्रभु! हम अभव्य हैं या नहीं, इसका निर्णय नहीं। और तू बात किसकी करता है? अरे रे! दुनिया क्या करती है यह? उसकी हाँ करनेवाले भी कैसे? हम अभव्य हैं, या भव्य,

इसकी अपने को खबर नहीं, वह तो भगवान जाने। अर..र..र..! देवचन्दभाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह साक्षात् धर्म तो आत्मा में होता है। अतिशयरूप से होता है। आहाहा! ऐसा यह (आत्मस्थित धर्म), कर्मक्षय करने में कुशल ऐसा निर्वाण का एक मार्ग है। दो नहीं। व्यवहारमोक्षमार्ग और निश्चयमोक्षमार्ग दो नहीं है। आहाहा! एक ही मार्ग है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' उसी से मैं शीघ्र किसी... आहाहा! मुनिराज अपनी दशा का वर्णन करते हैं। निर्मानरूप से। कुछ मान नहीं चाहिए। लोग माने, न माने। आहाहा! निर्वाण का एक मार्ग है। उसी से मैं शीघ्र किसी (-अद्भुत) निर्विकल्प सुख को प्राप्त करता हूँ। वर्तमान प्राप्त करता हूँ। आहाहा! कर्मक्षय करने में कुशल ऐसा निर्वाण का एक मार्ग है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। उसी से... व्यवहार से नहीं। मैं शीघ्र... अल्प काल में, किसी (-अद्भुत) निर्विकल्प सुख को प्राप्त करता हूँ। आहाहा! दो कलश भी बहुत अच्छे आये। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)